अतएव यहाँ ठीक ही कहा गया है कि मन से उत्पन्न हुई सब प्रकार की विषय वासना को त्यागना आवश्यक है। यह कृत्रिम साधन से नहीं हो सकता। परन्तु कृष्णभावनामृत के परायण हो जाने पर विषय कामना अनायास शान्त हो जाती है। अतएव मनुष्यमात्र को उत्साहपूर्वक कृष्णभावना के परायण हो जाना चाहिए, क्योंकि भगवद्भक्ति तत्काल शुद्ध सत्त्व में आरूढ़ कर देती है। भगवान् के दास के रूप में स्वरूप का आस्वादन करते हुए महात्माजन अपने आत्मा में सन्तुष्ट रहते हैं। ऐसे भगवत्प्राप्त पुरुष में तुच्छ विषय वासना का लेश भी शेष नहीं रहता। भगवान् श्रीकृष्ण के नित्य सेवक के रूप में अपने सहज स्वरूप में वह सदा प्रसन्न रहता है।

20.2

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।५६।।

दुःखेषु=तीनों प्रकार के दुःखों की प्राप्ति में; **अनुद्विग्नमनाः**=जिस का चित्त उद्वेगरहित रहता है; **सुखेषु**=सुख में; **विगतस्पृहः**=स्पृहाशून्य; **वीत**=मुक्त; **राग**=आसक्ति; **भय**=भय; **क्रोधः**=क्रोध से; **स्थितधीः**=स्थिर बुद्धि; **मुनिः**=ऋषि; **उच्यते**=कहा जाता है।

अनुवाद

जो तीनों प्रकार के दुःखों की प्राप्ति से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता, सुख में स्पृहाशून्य रहता है, तथा जो आसक्ति, भय और क्रोध से मुक्त है, उसे स्थिरमति मुनि कहा जाता है।।५६।।

तात्पर्य

मुनि उसे कहा जाता है, जो मनोधर्मी करने में मन को नाना प्रकार से उद्वेलित करने पर भी किसी तात्त्विक निष्कर्ष तक नहीं पहुँच सके। कहा जाता है कि प्रत्येक मुनि का भिन्न मत होता है; यहाँ तक कि जिस का मत अन्य मुनियों से भिन्न न हो, उसे तो सिद्धान्ततः मुनि कहा ही नहीं जा सकता। **नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।** परन्तु जैसा भगवान् ने यहाँ वर्णन किया है, 'स्थिरबुद्धि' मुनि साधारण मुनियों से भिन्न है। स्थिरबुद्धि मुनि सदा कृष्णभावनाभावित रहता है, क्योंकि वह मनोधर्म की प्रवृत्ति को समाप्त कर चुका है। भेदबुद्धि का उल्लंघन करके वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वासुदेव श्रीकृष्ण सर्वव्यापक हैं। वही **स्थितप्रज्ञ मुनि** कहा जाता है। ऐसा पूर्ण कृष्णभावनाभावित पुरुष त्रिविध दुःखों के आक्रमणों से विचलित नहीं होता। उन्हें अयाचित भगवत्कृपा समझता हुआ वह तो यही मानता है कि अपने पिछले पापों के लिए वह इससे कहीं अधिक दुःख उठाने के योग्य था। उसे अनुभूति होती है कि भगवत्कृपा से उसे नाममात्र के दुःख की ही प्राप्ति हुई है। इसी प्रकार, सुख की प्राप्ति होने पर वह अपने को उस सुख के अयोग्य मानकर सारा श्रेय श्रीभगवान् को देता है। वह अनुभव करता है कि भगवत्कृपा के प्रताप से ही उसे ऐसी सुखमयी अवस्था मिली है, जिससे वह और अच्छी प्रकार से भगवत्सेवा करने योग्य हो गया है।